सीताराम साव @ मुंगेरी
बनाम
झारखंड राज्य
12 नवंबर, 2007

[डॉ। अरिजीत पसायत और लोकेश्वर सिंह पंटा , जेजे ।]

दंड संहिता, 1860—धारा 364, 396 और 120 बी— अपहरण, डकैती और हत्या—कुछ आरोपियों के कब्जे से लूटी गई धनराशि की बरामदगी—एक आरोपी को सरकारी गवाह घोषित किया गया—निर्णय न्यायालय ने सरकारी गवाह के बयान के आधार पर आरोपी को दोषी ठहराया—अपील पर, उच्च न्यायालय ने मामले को नए सिरे से सुनवाई के लिए वापस भेज दिया क्योंकि सुनवाई सरकारी गवाह के बयान पर आधारित थी, जिसे सीआरपीसी की धारा 306 के तहत निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार दर्ज नहीं किया गया था—सरकारी गवाह का बयान दर्ज करने के बाद नए सिरे से सुनवाई—सरकारी गवाह के बयान के आधार पर नए सिरे से सुनवाई के बाद दोषसिद्धि—उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई—अपील पर, माना गया: दोषसिद्धि न्यायोचित है—सरकारी गवाह के साक्ष्य की पूरी तरह पुष्टि की गई और इस प्रकार विश्वसनीय है—मामले की रिमांड के बाद उसके बयान को दर्ज करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया में कोई अवैधता नहीं है

साक्ष्य अधिनियम, 1872—धारा 133 और 114 दृष्टांत (ख)—अनुमोदक—का कथन—विश्वसनीयता—पुष्टि—की आवश्यकता—निर्णय दिया गया: अनुमोदक के कथन की पुष्टि की आवश्यकता विवेक का विषय है, सिवाय तब जब ऐसी पुष्टि से छुटकारा पाना सुरक्षित हो—दंड प्रक्रिया संहिता, 1973—धारा 306।

अपीलकर्ता-आरोपी पर अन्य लोगों के साथ मिलकर डकैती और एक महिला की हत्या करने का आरोप लगाया गया था। अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि मृतक अपनी कार में कुछ पैसे लेकर आ रही थी, जिसे उसका क्यू ड्राइवर (आरोपी) चला रहा था। जब वह घर वापस नहीं लौटी, तो उसके पति (पीडब्लू 1) ने ड्राइवर-आरोपी के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई। मृतक का शव बरामद हुआ, कार पुलिस को कहीं और लावारिस हालत में मिली। ड्राइवर-आरोपी की गिरफ्तारी के बाद, लूटी गई रकम का कुछ हिस्सा बरामद हुआ

बरामद की गई। उसने अपने साथियों के नाम भी बताए। इसके बाद अन्य आरोपियों को गिरफ्तार किया गया । लूटी गई रकम का कुछ हिस्सा अन्य आरोपियों के घर से भी बरामद किया गया। एक अन्य आरोपी ने अपना अपराध कबूल किया और घटना के संबंध में बयान देने की इच्छा जताई। उसका बयान सीआरपीसी की धारा 306 के तहत दर्ज किया गया और उसे सरकारी गवाह बना दिया गया। सुनवाई के बाद अपीलकर्ता सहित अन्य आरोपियों को दोषी ठहराया गया। अपीलों में हाईकोर्ट ने देखा कि सीआरपीसी की धारा 306 के तहत सरकारी गवाह से पूछताछ अन्य आरोपियों की उपस्थिति में नहीं हुई थी और उससे जिरह भी नहीं की गई थी। इसलिए ट्रायल कोर्ट के फैसले को खारिज करते हुए उसने मामले को नए सिरे से कमिटल कार्यवाही के लिए वापस भेज दिया। मजिस्ट्रेट को सरकारी गवाह (पीडब्लू-6) से पूछताछ करने का निर्देश दिया गया

अपीलों को खारिज करते हुए न्यायालय ने

निर्णय: 1.1 साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करती है कि एक साथी एक सक्षम गवाह है और केवल इसलिए दोषसिद्धि अवैध नहीं है क्योंकि यह साथी की अपुष्ट गवाही पर आधारित है। यह धारा ऐसी अपुष्ट गवाही को स्वीकार्य बनाती है। लेकिन इस धारा को धारा 114, दृष्टांत (बी) के साथ पढ़ा जाना चाहिए। उत्तरार्द्ध धारा न्यायालय को कुछ तथ्यों के अस्तित्व को मानने का अधिकार देती है और दृष्टांत स्पष्ट करता है कि न्यायालय क्या मान सकता है और उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करता है कि न्यायालय को किन तथ्यों पर विचार करना चाहिए कि क्या दृष्टांत दिए गए सिद्धांत किसी दिए गए मामले पर लागू होते हैं या नहीं। दृष्टांत (बी) स्पष्ट शब्दों में कहता है कि जब तक कि उसके बारे में भौतिक विवरण पुष्ट नहीं हो जाते, तब तक साथी को मान्यता नहीं दी जा सकती। क़ानून किसी अभियुक्त को उसके साथी की अपुष्ट गवाही के आधार पर दोषी ठहराने की अनुमति देता है, लेकिन साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के दृष्टांत (बी) में निहित विवेक का नियम न्यायालय को सावधान करते हुए चेतावनी देता है कि जब तक किसी साथी की पुष्टि भौतिक विवरणों में न हो जाए, तब तक उस पर विश्वास करना सामान्यतः उचित नहीं है। इस प्रकार, नियम यह है कि पुष्टि की आवश्यकता एक अनिवार्य शर्त है।

मामला है , सिवाय इसके कि जब ऐसी पुष्टि से बचना सुरक्षित हो, तो न्यायाधीश के मन में यह स्पष्ट रूप से मौजूद होना चाहिए।

[पैरा 15] [1006-डी ,ई,एफ,जी]

सुरेश चंद्र बाहरी बनाम बिहार राज्य, एआईआर (1994) एससी 2420, पर भरोसा किया गया।

भुबोन साहू वी किंग, एआईआर (1949) पीसी 257, संदर्भित।

1.2. हालांकि धारा 114 दृष्टांत (बी) में प्रावधान है कि न्यायालय यह मान सकता है कि किसी साथी का साक्ष्य तब तक विश्वसनीय नहीं है जब तक कि उसकी पुष्टि न हो जाए, " हो सकता है " अनिवार्य नहीं है और न्यायालय का कोई भी निर्णय उसे अनिवार्य नहीं बना सकता। न्यायालय यह मानने के लिए बाध्य नहीं है कि वह विश्वसनीय नहीं है। यह अंततः न्यायालय के इस दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि साथी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की विश्वसनीयता क्या है।

[पैरा 16] [1007-ए ,बी]

जीएस बक्शीव , राज्य (दिल्ली प्रशासन), एआईआर (1979) एससी569; और रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर (1952) एससी 54, पर भरोसा किया गया।

रेक्स बनाम बास्कर्विल्ले, (1916) 2 केबी 658;

लिखित "ए ट्रीटीज़ ऑन द लॉ ऑफ एविडेंस" खंड 1 पैरा 967, संदर्भित।

ज्ञानेन्द्र नाथ घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [1960] 1 एससीआर 126; भीवा डोउलू पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर (1963) एससी 599; डीपीपी बनाम हेस्टर, (1972) 3 ऑल ईआर1056 और डीपीपी बनाम किलबोर्न (1973); एएच ईआर 440, संदर्भित।

1.3. यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक भौतिक परिस्थिति की स्वतंत्र पुष्टि हो, इस अर्थ में कि मामले में स्वतंत्र साक्ष्य, शिकायतकर्ता या सहयोगी की गवाही के अलावा, अपने आप में दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। बस इतना ही आवश्यक है कि कुछ अतिरिक्त साक्ष्य होने चाहिए जो यह संभावित बनाते हैं कि सहयोगी (या शिकायतकर्ता) की कहानी सत्य है और उस पर कार्रवाई करना उचित रूप से सुरक्षित है। स्वतंत्र साक्ष्य न केवल यह विश्वास करने के लिए सुरक्षित होना चाहिए कि अपराध किया गया था, बल्कि किसी तरह से उचित रूप से आरोपी को उससे जोड़ना चाहिए या कुछ भौतिक रूप से पुष्टि करके जोड़ने की प्रवृत्ति होनी चाहिए।

विशेष रूप से साथी या शिकायतकर्ता की गवाही कि अभियुक्त ने अपराध किया है। इसका मतलब यह नहीं है कि पहचान के बारे में पुष्टिकरण को अपराध के साथ अभियुक्त की पहचान करने के लिए आवश्यक सभी परिस्थितियों तक विस्तारित किया जाना चाहिए। पुष्टिकरण स्वतंत्र स्रोतों से आना चाहिए और इस प्रकार आम तौर पर एक साथी की गवाही दूसरे की पुष्टि करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। लेकिन निश्चित रूप से परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं कि पुष्टिकरण की आवश्यकता को समाप्त करना सुरक्षित हो और उन विशेष परिस्थितियों में इस तरह से दोषसिद्धि अवैध नहीं होगी। पुष्टिकरण को प्रत्यक्ष साक्ष्य होने की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। यह पर्याप्त है यदि यह अपराध के साथ उसके संबंध का केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य है।

[पैरा 26,27,28,29 और 30] [1010-सी, ई, एफ, जी; 1011-बी, सी]

के. हाशिम बनाम तमिलनाडु राज्य, [2005] 1 एससीसी 237, पर भरोसा किया गया।

एमओ शम्सुद्दीन बनाम केरल राज्य, [1995] 3 एससीसी 351, का उल्लेख किया गया।

2. वर्तमान मामले में, अनुमोदक ने अपने साक्ष्य में घटनाओं का क्रम दिया है जिसके कारण मृतक की हत्या हुई और उसने यह भी बताया कि कैसे एक साजिश रची गई और कैसे अन्य आरोपी व्यक्तियों की मदद से साजिश को अंजाम दिया गया और कैसे मृतक को आरोपी 'एल' की शह और सक्रिय भागीदारी पर चालक-आरोपी द्वारा चाकू मारा गया। आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से यह कहा गया है कि इस गवाह ने उस लड़के का नाम नहीं बताया, जो उसे बुलाने आया था और न ही उसने ऑटो रिक्शा का नंबर और वह स्थान बताया, जहां अन्य सहयोगी खड़े थे। हालांकि ये सभी बिंदु महत्वपूर्ण नहीं हैं, लेकिन पीडब्लू-6 के साक्ष्य की पुष्टि तब होती है जब डॉक्टर ने मृतक के शरीर पर चोट पाई और आगे यह कि गाल और गर्दन पर खरोंच के निशान भी पाए गए जब आरोपी-अपीलकर्ता ने मृतक का मुंह दबाया ताकि वह शोर न मचाए और आगे यह कि पैसे लूटे गए थे और लूटे गए पैसे का कुछ हिस्सा उसके इकबालिया बयान के आधार पर चालक-आरोपी के कब्जे से बरामद किया गया था। यद्यपि यह तथ्य पी.डब्लू.-6 की गिरफ्तारी से पहले घटित हुआ है, परन्तु पी.डब्लू.-6 के साक्ष्य से ये सभी तथ्य पी.डब्लू.-6 के साक्ष्य की पुष्टि करते हैं, क्योंकि उसे ये सभी तथ्य ज्ञात नहीं थे और उसके साक्ष्य से ये सभी तथ्य पुष्ट होते हैं।

पुष्ट होते हैं और, इसलिए, पीडब्लू-6 के साक्ष्य की पूर्ण पुष्टि होती है और पीडब्लू-6 के साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई आधार नहीं है और इसलिए पीडब्लू-6 के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त-अपीलकर्ता और सह-अभियुक्त ' एल' को दोषी पाया गया और वे अपहरण के साथ-साथ घटना में धारा 396 आईपीसी के तहत शामिल थे। [पैरा 32] [1011-ई, एफ, जी; 1012-ए, बी]

3. मामले की रिमांड के बाद सीजेएम द्वारा अपनाए गए आदेश और प्रक्रिया में कोई अवैधता नहीं है। धारा 306 सीआरपीसी का पूर्ण अनुपालन किया गया था। अनुमोदक की जांच का चरण केवल उसे क्षमा प्रदान किए जाने के बाद और क्षमा के बाद ही आता है। , अभियुक्त की उपस्थिति में गवाह के रूप में उसकी जांच की गई और उससे जिरह भी की गई। [पैरा 34] [1012-डी, ई]

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 1528/2007।

आपराधिक अपील संख्या 575/2002 में झारखंड उच्च न्यायालय, रांची के अंतिम निर्णय एवं आदेश दिनांक 29.6.2005 से।

साथ

सीआरएल.ए . संख्या 1531/2007.

अपीलकर्ता के लिए पीएस मिश्रा, तथागत एच. वर्धन , ध्रुव कुमार जलिया , रवि सी. प्रकाश और मनु शंकर मिश्रा।

अपीलार्थी की ओर से अपराध पंजीयन संख्या 1531/2007 में संतोष सिंह (एसी) द्वारा पैरवी की गई।

प्रतिवादी की ओर से अनिल के. झा .

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा सुनाया गया:

डॉ. अरिजीत पसायत, जे.

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. इन अपीलों में चुनौती झारखंड उच्च न्यायालय की खंडपीठ जी के फैसले को है, जिसमें अपीलकर्ताओं द्वारा दायर अपीलों को खारिज कर दिया गया था और भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आईपीसी') की धारा 120 बी के साथ धारा 364 और 396 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया था - वास्तव में, उच्च न्यायालय ने दो अपीलों का निपटारा किया, दोनों ही निर्देश दिए गए थे

सत्र परीक्षण संख्या 156/1997 में पारित 16 जुलाई, 2002 और 23 जुलाई, 2002 के दोषसिद्धि के निर्णय के विरुद्ध । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, ट्रायल कोर्ट ने दोनों आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी पाया और धारा 364 और 396 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई। हालांकि, धारा 120 बी के तहत कोई अलग से सजा नहीं सुनाई गई, जबकि सह-अभियुक्त लक्ष्मी प्रसाद को धारा 412 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराध के लिए पहले से ही काटी गई अवधि के लिए अतिरिक्त सजा सुनाई गई।

3. उच्च न्यायालय ने अपीलों में कोई तथ्य नहीं पाया तथा उन्हें ऊपर उल्लिखित अनुसार खारिज कर दिया।

4. पृष्ठभूमि तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं:

दिनांक 8.1.1992 को सूचक की पत्नी गायत्री देवी अपनी एम्बेसडर कार रजिस्ट्रेशन संख्या AAY 7375 से पंडरा कृषि बाजार गयी थी और वहां से दुकान संख्या 244 से 251 तक का दिन भर का बिक्री का माल लेकर लगभग 8 बजे रात्रि में अपने घर के लिए निकली थी। कार का चालक लक्ष्मी कार को आरोपियों में से एक पासवान चला रहा था। गायत्री देवी 1,84,405/- रुपए लेने के बाद वापस घर नहीं लौटी तो मुखबिर ने सुखदेव नगर थाने में अपनी पत्नी और कार चालक लक्ष्मी के लापता होने की सूचना दी। पासवान .

लक्ष्मी पासवान को मुखबिर ने अपने कार चालक के रूप में पिछले ड्राइवर राजेंद्र की सिफारिश पर नियुक्त किया था। चौधरी । जब सूचक की पत्नी और ड्राइवर रात तक वापस नहीं आए, तो सूचक ने अगली सुबह यानी 9.1.1992 को एक लिखित रिपोर्ट पेश की जिसमें आरोप लगाया गया कि लक्ष्मी कार चालक पासवान ने असामाजिक तत्वों के साथ मिलकर अपनी पत्नी की हत्या करने तथा पैसे छीनने के उद्देश्य से कार सहित उसका अपहरण कर लिया। आरोप है कि मुखबिर को विश्वसनीय सूत्रों से पता चला कि रात में उसकी कार रांच रामगढ़ रोड पर देखी गई है।

उपरोक्त सूचना के आधार पर सुखदेव नगर थाने में लक्ष्मी के खिलाफ धारा 364 आईपीसी के तहत मामला दर्ज किया गया। पासवान ही थे और अनुसंधान के दौरान सूचक की पत्नी गायत्री देवी का मृत शरीर रामगढ़ थाना अंतर्गत गिद्दी राष्ट्रीय पथ पर पाया गया था। जांच रिपोर्ट तैयार करने के बाद, गवाहों की उपस्थिति में अप.क्र. 1. मामले की जांच कर शव को पोस्टमार्टम के लिए आरएमसीएच भेज दिया गया।

इसके बाद, मुखबिर की कार जिसका रजिस्ट्रेशन नंबर AAY 7375 A है, कुज्जू टाउन चौकी के पास लावारिस हालत में पड़ी मिली। इसके बाद सुखदेव नगर थाने के प्रभारी ने कुज्जू टीओपी से उक्त कार को अपने कब्जे में ले लिया और गवाहों की मौजूदगी में तलाशी ली गई और तलाशी के दौरान कुछ सामान जब्त किए गए। जब्ती सूची तैयार की गई और जांच के दौरान आरोपी लक्ष्मी को गिरफ्तार किया गया। पासवान को 14.1.1992 को औरंगाबाद जिले के मुंगराही गांव से गिरफ्तार किया गया और गायत्री देवी से लूटी गई रकम का एक हिस्सा, जो 30,695 रुपये थी, भी उसके इकबालिया बयान के आधार पर उसके घर से बरामद कर लिया गया। लक्ष्मी पासवान ने पुलिस को अपने साथियों के नाम बताए और बाद में अन्य आरोपियों को भी गिरफ्तार कर लिया गया । जांच के दौरान इकबालिया बयान के आधार पर गिरजा सिंह के घर से 27,220 रुपये की रकम भी बरामद की गई । बाद में एक आरोपी ललित को भी गिरफ्तार कर लिया गया। सांगा को भी गिरफ्तार किया गया, जिसने पुलिस के समक्ष अपना अपराध स्वीकार किया तथा घटना के संबंध में बयान देने की इच्छा व्यक्त की। उसका बयान मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'सीआरपीसी') की धारा 306 के अंतर्गत दर्ज किया गया तथा उसे क्षमादान दिया गया। मामला सत्र न्यायालय को सौंपा गया, जिसे एसटी संख्या 319/92 के रूप में पंजीकृत किया गया तथा उसके पश्चात आरोपी व्यक्तियों ने विद्वान पंचम अपर न्यायिक आयुक्त, रांची की अदालत में मुकदमा झेला तथा विद्वान अपर न्यायिक आयुक्त ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार करते हुए उन्हें दोषी पाया; लेकिन 1.10.1992 के अपने निर्णय द्वारा दो आरोपियों, अर्थात् गिरजा सिंह तथा दिनेश कुमार सिंह को बरी कर दिया। आरोपियों में से एक, अर्थात् लक्ष्मी पासवान को मृत्युदंड की सजा सुनाई गई, जबकि अन्य अभियुक्तों को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। इसके बाद, राज्य और अभियुक्तों दोनों ने विवादित निर्णय के खिलाफ अपील दायर की और उच्च न्यायालय ने 28 जुलाई, 1993 को अपने निर्णय द्वारा रांची के पांचवें अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त द्वारा पारित दोषसिद्धि के निर्णय को रद्द कर दिया और मामले को नए सिरे से प्रतिबद्धता कार्यवाही के लिए विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची की अदालत में वापस भेज दिया गया और विद्वान सीजेएम को ललित की जांच करने का निर्देश दिया गया। सांगा , ^ अनुमोदक, (पीडब्लू 6), को कानून और प्रक्रिया के अनुसार अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में पेश किया। मामले की रिमांड के बाद, विद्वान सीजेएम ने अनुमोदक ललित की जांच की सांगा पर धारा 306 सीआरपीसी के तहत मामला दर्ज किया गया और उसके बाद 19.2.1997 के आदेश द्वारा मामले को सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया और उसके बाद

रिमांड के बाद , मामला सत्र परीक्षण संख्या 156/97 के रूप में पंजीकृत किया गया था। विद्वान न्यायिक आयुक्त, रांची ने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ मुकदमा चलाने के लिए मामले को दूसरे न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया। रिकॉर्ड प्राप्त होने पर, आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 396, 412 और 120 (बी) आईपीसी के तहत दंडनीय अपराधों के लिए आरोप तय किए गए।

5. मुकदमा आगे बढ़ा और मुकदमे के दौरान ट्रायल कोर्ट ने बीस गवाहों के साक्ष्य , दस्तावेजी साक्ष्य और भौतिक साक्ष्यों के अलावा, अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अपीलकर्ता दोषी हैं और तदनुसार उन्हें दोषी ठहराया गया। बयान दर्ज होने के बाद, आरोपी गिरजा सिंह भाग गया और इसलिए, उसका मुकदमा अन्य आरोपियों के मुकदमे से अलग कर दिया गया।

6. ट्रायल कोर्ट ने 23 गवाहों के बयान दर्ज किए और उनके साक्ष्य की जांच की और आरोपी-अपीलकर्ताओं को दोषी पाया। इस मामले में, 1.0., डॉक्टर और मुखबिर जैसे सभी आवश्यक गवाहों की जांच की गई।

अपील में उच्च न्यायालय ने माना कि अभियोजन पक्ष ने इस मामले से जुड़े गवाहों की जांच करने में अपनी ओर से कोई कोताही नहीं बरती है।

7. अपीलकर्ताओं का मूल तर्क, जैसा कि उच्च न्यायालय के समक्ष कहा गया था, यह था कि घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं था और केवल ललित के साक्ष्य के आधार पर सांगा , सरकारी गवाह, आरोपी व्यक्तियों को दोषी पाया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि जिस तरह से ललित सांगा को क्षमादान दिया जाना अवैध है। आपराधिक अपील संख्या 202/1992 में उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का संदर्भ दिया गया। यह बताया गया कि पहले सत्र मामले में दर्ज साक्ष्य जहां सत्र परीक्षण संख्या 319/1992 को अलग रखा गया था और जब संबंधित निर्णय को अलग रखा गया था, तो प्रक्रिया को नए सिरे से शुरू किया जाना चाहिए था। निर्णय द्वारा, मामले को सीजेएम की अदालत में वापस भेज दिया गया, जिसे ललित की जांच करने का निर्देश दिया गया था सांगा को गवाह के रूप में पेश किया गया। आरोपी अपीलकर्ताओं की शिकायत है कि प्रथम निर्णय में उच्च न्यायालय के निर्देश के बाद धारा 306 सीआरपीसी के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया। ललित सांगा से आरोपी व्यक्तियों की उपस्थिति में पूछताछ की गई और उससे जिरह की गई और उसके बाद मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया लेकिन ललित सांगा को क्षमादान नहीं दिया गया और उच्च न्यायालय के आदेश पर उनसे दोबारा पूछताछ की गई। इसलिए, यह कहा गया है कि धारा 306 सीआरपीसी की आवश्यकताओं का अनुपालन नहीं किया गया था। यह कहा गया कि उन्हें क्षमादान दिया जाना चाहिए था

और उसके बाद धारा 306 सीआरपीसी के प्रावधानों के अनुसार , अभियुक्त की उपस्थिति में गवाह के रूप में उसकी जांच की जानी चाहिए थी और उससे जिरह की जानी चाहिए थी। लेकिन केवल एक भाग का ही अनुपालन किया गया है और उसके बाद मामला न्यायालय को सौंप दिया गया है सत्र न्यायालय ने कहा कि उसे क्षमादान दिया जाना था, लेकिन पहले भाग का अनुपालन नहीं किया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि इस गवाह का कथित इकबालिया बयान भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 133 (संक्षेप में ' साक्ष्य अधिनियम') आरोपी ललित सांगा ने घटना में अपनी सक्रिय भागीदारी की बात कबूल नहीं की है। उसका साक्ष्य भी पूरी तरह सत्य नहीं है।

8. दूसरी ओर राज्य के विद्वान वकील ने विवादित निर्णय का समर्थन किया।

9. उच्च न्यायालय ने कहा कि सीजेएम के आदेश को खारिज नहीं किया गया। आंशिक रूप से खारिज की गई बात यह थी कि ललित सांगा से पूछताछ की गई, लेकिन उससे जिरह नहीं की गई और उसका बयान आरोपी की मौजूदगी में दर्ज नहीं किया गया। आदेश के उस हिस्से का अनुपालन किया गया है और ललित सांगा से अभियुक्त की उपस्थिति में पूछताछ की गई तथा उनसे जिरह भी की गई और तत्पश्चात मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया।

10.हम अपील के इस भाग पर बाद में विचार करेंगे। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रतिवादी-राज्य के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि धारा 306 सीआरपीसी के तहत अनिवार्य प्रक्रिया का पूरी तरह से पालन किया गया है।

11.राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि न केवल धारा 306 सीआरपीसी की अपेक्षाओं का अनुपालन किया गया है , बल्कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (बी) के साथ धारा 133 का भी अनुपालन किया गया है।

12.साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 और 114 (बी) इस प्रकार है:

"133. सह-अपराधी- सह-अपराधी अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध सक्षम साक्षी होगा; और कोई दोषसिद्धि केवल इसलिए अवैध नहीं है कि वह सह-अपराधी की अपुष्ट गवाही पर आधारित है।

114(ख)- न्यायालय यह मान सकता है कि कोई सह-अपराधी विश्वसनीयता के अयोग्य है, जब तक कि उसके बारे में तात्विक विवरण प्रमाणित न हो जाएं।

13. साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 महत्वपूर्ण है। यह सह-अपराधी के साक्ष्य से संबंधित है। सकारात्मक शब्दों में यह प्रावधान करता है कि

दोषसिद्धि केवल इसलिए अवैध नहीं है क्योंकि वह सहयोगी की अपुष्ट गवाही पर आधारित है, क्योंकि सहयोगी एक सक्षम गवाह है।

14. भुबन में साहू बनाम द किंग, एआईआर (1949) पीसी 257, में यह देखा गया कि किसी साथी के साक्ष्य पर कार्रवाई करने के लिए पुष्टि की आवश्यकता वाला नियम विवेक का नियम है। लेकिन विवेक का नियम तब बहुत महत्व रखता है जब विश्वसनीयता की कसौटी पर इसकी विश्वसनीयता की जांच की जाती है। यदि यह विश्वसनीय और ठोस पाया जाता है, तो न्यायालय साथी की अपुष्ट गवाही पर भी दोषसिद्धि दर्ज कर सकता है। साथी की गवाही की विश्वसनीयता के विषय पर, यह प्रस्ताव कि साथी की पुष्टि होनी चाहिए, इसका मतलब यह नहीं है कि उसी तथ्य के लिए संचयी या स्वतंत्र गवाही होनी चाहिए जिसके लिए उसने गवाही दी है। साथ ही, साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत उपलब्ध अनुमान महत्वपूर्ण है। यह कहता है कि न्यायालय यह मान सकता है कि कोई साथी तब तक विश्वास के योग्य नहीं है जब तक कि उसकी "महत्वपूर्ण विशेषताओं" में पुष्टि न हो जाए।

15. साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि सह-अपराधी एक सक्षम गवाह है और केवल इसलिए दोषसिद्धि अवैध नहीं है क्योंकि यह सह-अपराधी की अपुष्ट गवाही पर आधारित है।

दूसरे शब्दों में, यह धारा ऐसी अपुष्ट गवाही को स्वीकार्य बनाती है। लेकिन इस धारा को धारा 114, दृष्टांत (बी) के साथ पढ़ा जाना चाहिए। उत्तरार्द्ध धारा न्यायालय को कुछ तथ्यों के अस्तित्व को मानने का अधिकार देती है और दृष्टांत स्पष्ट करता है कि न्यायालय क्या मान सकता है और उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट करता है कि न्यायालय को यह विचार करते समय किन तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए कि दृष्टांत दिए गए सिद्धांत किसी दिए गए मामले पर लागू होते हैं या नहीं। दृष्टांत (बी) स्पष्ट शब्दों में कहता है कि जब तक उसके बारे में भौतिक विवरणों में पुष्टि नहीं हो जाती, तब तक साथी विश्वास के योग्य नहीं है। क़ानून साथी की अपुष्ट गवाही के आधार पर अभियुक्त को दोषी ठहराने की अनुमति देता है लेकिन साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के दृष्टांत (बी) में निहित विवेक का नियम न्यायालय को सावधान करते हुए चेतावनी देता है कि जब तक भौतिक विवरणों में पुष्टि नहीं हो जाती, तब तक कोई साथी आम तौर पर विश्वास करने योग्य नहीं होता। दूसरे शब्दों में, नियम यह है कि पुष्टि की आवश्यकता विवेक का विषय है, सिवाय तब जब ऐसी पुष्टि से बचना सुरक्षित हो, यह बात न्यायाधीश के मन में स्पष्ट रूप से मौजूद होनी चाहिए। [देखें सुरेश चंद्र बाहरी

बनाम बिहार राज्य , एआईआर (1994) एससी 2420]।

16. हालाँकि धारा 114 दृष्टांत (बी) में प्रावधान है कि न्यायालय यह मान सकता है कि किसी साथी का साक्ष्य तब तक विश्वसनीय नहीं है जब तक कि उसकी पुष्टि न हो जाए, " हो सकता है " अनिवार्य नहीं है और न्यायालय का कोई भी निर्णय उसे अनिवार्य नहीं बना सकता। न्यायालय यह मानने के लिए बाध्य नहीं है कि वह विश्वसनीय नहीं है। यह अंततः न्यायालय के इस दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि साथी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की विश्वसनीयता कितनी है।

17. रेक्स बनाम बास्कर्विले, (1916) 2 केबी 658 में , यह देखा गया कि पुष्टिकरण के लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त ने अपराध किया है; यह पर्याप्त है यदि अपराध के साथ उसके संबंध का केवल एक परिस्थितिजन्य साक्ष्य हो ।

18. जी.एस. बक्शी बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन), एआईआर (1979) एससी 569 एक विपरीत मामले से निपट रहा था कि यदि किसी सहयोगी का साक्ष्य स्वाभाविक रूप से असंभाव्य है तो उसे संपुष्टि से ताकत नहीं मिल सकती है।

19. टेलर ने अपने ग्रंथ में कहा है कि "सह-अपराधी जो आमतौर पर इच्छुक और हमेशा कुख्यात गवाह होते हैं, और जिनकी गवाही को आवश्यकता से स्वीकार किया जाता है, ऐसे साक्ष्य का सहारा लिए बिना, मुख्य अपराधियों को न्याय के कटघरे में लाना अक्सर असंभव होता है"। (टेलर ने "ए ट्रीटीज ऑन द लॉ ऑफ एविडेंस" (1931) खंड 1 पैरा 967 में लिखा है)।

20. हालाँकि, अनुमोदक का साक्ष्य एक विश्वसनीय गवाह के रूप में दिखाया जाना चाहिए।

21. ज्ञानेन्द्र में नाथ घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, [१९६०] १ एससीआर १२६, इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि अनुमोदक के बयान के भौतिक विवरणों में पुष्टि होनी चाहिए, क्योंकि उसे स्वयं-कबूल देशद्रोही माना जाता है। इस न्यायालय ने भीवा में डोउलू पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर (1963) एससी 599 ने माना कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 और 114 दृष्टांत (बी) का संयुक्त प्रभाव यह था कि एक साथी साक्ष्य देने के लिए सक्षम है, लेकिन केवल उसकी गवाही के आधार पर आरोपी को दोषी ठहराना असुरक्षित होगा। हालाँकि साथी की गवाही के आधार पर आरोपी को दोषी ठहराना अवैध नहीं कहा जा सकता, फिर भी न्यायालय, व्यवहार में, भौतिक विवरणों में पुष्टि के बिना ऐसे गवाह के साक्ष्य को स्वीकार नहीं करेंगे। इस संबंध में भीवा में न्यायालय डोउलू पाटिल का मामले में निम्नानुसार अवलोकन किया गया:

"उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुंचते समय हम साक्ष्य अधिनियम की धारा 133 के प्रावधानों को नजरअंदाज नहीं कर रहे हैं, जो इस प्रकार है:

धारा 133. "सह-अपराधी अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध सक्षम गवाह होगा; और कोई दोषसिद्धि केवल इसलिए अवैध नहीं है क्योंकि वह सह-अपराधी की अपुष्ट गवाही पर आधारित है।"

इस बात पर संदेह नहीं किया जा सकता कि इस धारा के तहत केवल एक सहयोगी की अपुष्ट गवाही के आधार पर दोषसिद्धि अवैध नहीं हो सकती है, फिर भी न्यायालय विवेक और व्यवहार के नियम की अनदेखी नहीं कर सकते हैं, जो कि मार्टिन बी. के शब्दों में आर . बनाम बॉयस , (1861) 9 कॉक्स सीसी 32 में "इतना पवित्र हो गया है कि यह सम्मान के योग्य है और लॉर्ड एबिंगर के शब्द "यह कानून के सभी सम्मान के योग्य है:।" मार्गदर्शन का यह नियम साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के दृष्टांत (बी) में पाया जाता है जो इस प्रकार है:

"न्यायालय यह मान सकता है कि कोई सह-अपराधी तब तक विश्वास के योग्य नहीं है जब तक कि उसके बारे में भौतिक विवरण प्रमाणित न हो जाएं।"

22. 'पुष्टि' शब्द का अर्थ मात्र ऐसा साक्ष्य नहीं है जो अन्य साक्ष्य की पुष्टि करता हो। डीपीपी बनाम हेस्टर, (1972) 3 ऑल ईआर 1056 में लॉर्ड मॉरिस ने कहा:

"पुष्टिकरण का उद्देश्य ऐसे साक्ष्य को वैधता या विश्वसनीयता प्रदान करना नहीं है जो अपर्याप्त या संदिग्ध या अविश्वसनीय हो, बल्कि केवल उस साक्ष्य की पुष्टि और समर्थन करना है जो साक्ष्य के रूप में पर्याप्त और संतोषजनक और विश्वसनीय हो; और पुष्टिकरण साक्ष्य तभी अपनी भूमिका निभाएगा जब वह स्वयं पूरी तरह से विश्वसनीय हो ....."

23. डीपीपी बनाम किलबौमे , (1973) 1 ऑल ईआर 440 में, यह इस प्रकार देखा गया था:

"पुष्टिकरण के विचार में कोई तकनीकी बात नहीं है। जब जीवन के सामान्य मामलों में किसी को संदेह होता है कि किसी विशेष कथन पर विश्वास करना है या नहीं, तो वह स्वाभाविक रूप से यह देखना चाहता है कि क्या यह उस विशेष मामले से संबंधित अन्य कथनों या परिस्थितियों के साथ मेल खाता है; यह जितना बेहतर तरीके से मेल खाता है उतना ही अधिक व्यक्ति उस पर विश्वास करने के लिए इच्छुक होता है।

संदिग्ध कथन की अधिक या कम सीमा तक पुष्टि की जाती है

अन्य कथनों या परिस्थितियों के आधार पर जिसके साथ यह फिट बैठता है।"

24. आर.वी. बास्कर्विल्ले (सुप्रा) में , जो इस पहलू पर एक प्रमुख मामला है , लॉर्ड रीडिंग ने कहा:

> "इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी साथी का अपुष्ट साक्ष्य कानून में स्वीकार्य है, लेकिन यह लंबे समय से सामान्य कानून में व्यवहार का नियम रहा है कि न्यायाधीश जूरी को साथी या साथियों की अपुष्ट गवाही के आधार पर कैदी को दोषी ठहराने के खतरे के बारे में चेतावनी दे, और न्यायाधीश के विवेकानुसार, उन्हें ऐसे साक्ष्य के आधार पर दोषी न ठहराने की सलाह दे; लेकिन न्यायाधीश को जूरी को यह बताना चाहिए कि ऐसे अपुष्ट साक्ष्य के आधार पर दोषी ठहराना उनके कानूनी अधिकार क्षेत्र में है। व्यवहार का यह नियम वस्तुतः कानून के नियम के समतुल्य हो गया है, और जब से आपराधिक अपील अधिनियम, 1907 का न्यायालय लागू हुआ है, इस न्यायालय ने माना है कि न्यायाधीश द्वारा ऐसी चेतावनी के अभाव में, दोषसिद्धि को रद्द कर दिया जाना चाहिए... यदि न्यायाधीश द्वारा उचित चेतावनी के बाद भी जूरी कैदी को दोषी ठहराती है, तो यह न्यायालय केवल इस आधार पर दोषसिद्धि को रद्द नहीं करेगा कि साथी की गवाही अपुष्ट थी।"

25. रामेश्वर में बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर (1952) एससी 54, बोस, जे., ने एक साथी की अपुष्ट गवाही की स्वीकार्यता के संबंध में बास्करविले मामले में निर्धारित नियम का उल्लेख करने के बाद, इस प्रकार माना:

> "मेरे विचार से, जहाँ तक सह-अपराधियों का सवाल है, भारत में यही कानून है और यौन अपराधों के मामले में तो यह निश्चित रूप से कोई उच्चतर नहीं है। इस देश के उद्देश्यों के लिए केवल एक स्पष्टीकरण आवश्यक है कि इस प्रकार के अपराधों की सुनवाई कभी-कभी जूरी की सहायता के बिना न्यायाधीश द्वारा की जाती है। इन मामलों में यह आवश्यक है कि न्यायाधीश अपने निर्णय में कुछ संकेत दें कि उनके मन में सावधानी का यह नियम है और उन्हें अपने समक्ष विशेष मामले के तथ्यों पर पुष्टि की आवश्यकता को अनावश्यक मानने के कारण बताने चाहिए और यह दिखाना चाहिए कि वह उस विशेष मामले में पुष्टि के बिना दोषी ठहराना क्यों सुरक्षित मानते हैं।"

न्यायमूर्ति बोस ने इसी निर्णय में आगे कहा:

> "अब मैं पुष्टिकरण की प्रकृति और सीमा पर आता हूँ, जब इसे छोड़ना सुरक्षित नहीं माना जाता है। यहाँ, फिर से, नियमों को लॉर्ड रीडिंग ने बास्करविले मामले में पृष्ठ 664 से 669 पर स्पष्ट रूप से समझाया है। यह असंभव होगा, वास्तव में यह खतरनाक होगा, उस तरह के साक्ष्य को तैयार करना जो होना चाहिए, या
> जाएगा । इसकी प्रकृति और सीमा प्रत्येक मामले की परिस्थितियों और आरोपित अपराध के अनुसार अलग-अलग होनी चाहिए। लेकिन इस सीमा तक नियम स्पष्ट हैं।

26. सबसे पहले, यह आवश्यक नहीं है कि हर महत्वपूर्ण परिस्थिति की स्वतंत्र पुष्टि हो, इस अर्थ में कि मामले में स्वतंत्र साक्ष्य, शिकायतकर्ता या सहयोगी की गवाही के अलावा, अपने आप में दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। जैसा कि लॉर्ड रीडिंग्स कहते हैं -

> 'वास्तव में, यदि यह आवश्यक हो कि अपराध के प्रत्येक विवरण में सहयोगी की पुष्टि की जाए, तो उसका साक्ष्य मामले के लिए आवश्यक नहीं होगा, यह केवल अन्य और स्वतंत्र गवाही की पुष्टि करेगा।'

27. केवल इतना ही अपेक्षित है कि कुछ अतिरिक्त साक्ष्य हों, जिससे यह सम्भव हो सके कि सहयोगी (या शिकायतकर्ता) की कहानी सत्य है और उस पर कार्रवाई करना उचित रूप से सुरक्षित है।

28. दूसरे, स्वतंत्र साक्ष्य से न केवल यह विश्वास करना सुरक्षित होना चाहिए कि अपराध किया गया था, बल्कि किसी तरह से अभियुक्त को अपराध से जोड़ना चाहिए या जोड़ने की प्रवृत्ति होनी चाहिए, किसी विशेष सामग्री में साथी या शिकायतकर्ता की गवाही की पुष्टि करके कि अभियुक्त ने अपराध किया है। इसका मतलब यह नहीं है कि पहचान के लिए पुष्टिकरण को अपराध के साथ अभियुक्त की पहचान करने के लिए आवश्यक सभी परिस्थितियों तक विस्तारित किया जाना चाहिए। फिर से, केवल इतना ही आवश्यक है कि स्वतंत्र साक्ष्य हो जो गवाह की कहानी पर विश्वास करना उचित रूप से सुरक्षित बनाए कि अभियुक्त वह था, या उनमें से एक था, जिसने अपराध किया था। नियम के इस भाग का कारण यह है कि-

" एक व्यक्ति जो स्वयं किसी अपराध का दोषी रहा है, वह हमेशा मामले के तथ्यों को बताने में सक्षम होगा, और यदि पुष्टि केवल उस इतिहास की सच्चाई पर हो, व्यक्तियों की पहचान किए बिना, तो वह वास्तव में है।"

पुष्टि ..... नहीं इससे यह बिल्कुल भी पता नहीं चलता कि पक्ष ने इसमें भाग लिया था।"

29. तीसरा, पुष्टिकरण स्वतंत्र स्रोतों से आना चाहिए और इस प्रकार आम तौर पर एक साथी की गवाही दूसरे की पुष्टि करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। लेकिन निश्चित रूप से परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं कि पुष्टिकरण की आवश्यकता को समाप्त करना सुरक्षित हो और उन विशेष परिस्थितियों में इस आधार पर दोषसिद्धि अवैध नहीं होगी। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि यह तर्क दिया गया था कि इस मामले में माँ एक स्वतंत्र स्रोत नहीं थी।

30. चौथा, पुष्टिकरण के लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। यदि यह केवल सुश्री के परिस्थितिजन्य साक्ष्य है तो यह पर्याप्त है। अपराध के साथ संबंध । अन्यथा, "कई अपराध जो आमतौर पर गुप्त रूप से साथियों के बीच किए जाते हैं, जैसे कि अनाचार, महिलाओं के साथ अपराध (या अप्राकृतिक अपराध) 'कभी भी न्याय के कटघरे में नहीं लाए जा सकते"। [देखें : एम.ओ. शम्सुद्दीन बनाम केरल राज्य, [1995] 3 एससीसी 351]

31. उपरोक्त स्थिति को के. हाशिम ने उजागर किया है बनाम तमिलनाडु राज्य, [2005] 1 एससीसी 237।

32. आरोपी ललित सांगा ने अपने साक्ष्य में उन घटनाओं का क्रम बताया है जिसके कारण गायत्री देवी की हत्या हुई और उन्होंने यह भी बताया कि किस प्रकार षड्यंत्र रचा गया और किस प्रकार अन्य आरोपियों की मदद से षड्यंत्र को अंजाम दिया गया तथा किस प्रकार लक्ष्मी ने गायत्री देवी को चाकू मारा। पासवान ने आरोपी लालू राम की शह और सक्रिय भागीदारी पर आरोप लगाया । आरोपी-अपीलकर्ता की ओर से कहा गया है कि इस गवाह ने उस लड़के का नाम नहीं बताया, जो उसे बुलाने आया था, न ही उसने ऑटो रिक्शा का नंबर और वह स्थान बताया, जहां अन्य साथी खड़े थे। हालांकि ये सभी बिंदु महत्वपूर्ण नहीं हैं, लेकिन पीडब्लू-6 के साक्ष्य की पुष्टि तब होती है जब डॉक्टर ने गायत्री देवी के शरीर पर चोट पाई और आगे यह भी कि गाल और गर्दन पर खरोंच के निशान भी पाए गए जब आरोपी-अपीलकर्ता ने गायत्री देवी का मुंह दबाया ताकि वह शोर न मचाए और आगे यह कि पैसे लूटे गए थे और लूटे गए पैसे का कुछ हिस्सा उसके कब्जे से बरामद किया गया था।

लक्ष्मी पासवान के इकबालिया बयान के आधार पर। यद्यपि यह तथ्य पी.डब्लू.-6 की गिरफ्तारी से पहले घटित हुआ है, लेकिन पी.डब्लू.-6 के साक्ष्य से ये सभी तथ्य पी.डब्लू.-6 के साक्ष्य की पुष्टि करते हैं क्योंकि उसे ये सभी तथ्य ज्ञात नहीं थे और उसके साक्ष्य से ये सभी तथ्य पुष्ट होते हैं और, इसलिए, पी.डब्लू.-6 के साक्ष्य की पूर्ण पुष्टि होती है और पी.डब्लू.-6 के साक्ष्य पर अविश्वास करने का कोई आधार नहीं है और इसलिए पी.डब्लू.-6 के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त-अपीलकर्ता और सह-अभियुक्त लालू राम को दोषी पाया गया और वे अपहरण के साथ-साथ घटना में धारा 396 आई.पी.सी. के तहत शामिल थे।

33. अब हम क्षमा से संबंधित प्रश्न पर विचार करेंगे।

34. जहां तक सीजेएम के आदेश के क्षमा वाले हिस्से का सवाल है, उसे खारिज नहीं किया गया है और अन्य हिस्से से संबंधित कार्यवाही खारिज कर दी गई है जिसके तहत ललित सांगा से पूछताछ की गई, लेकिन उनसे जिरह नहीं की गई और न ही उनका बयान आरोपी की मौजूदगी में दर्ज किया गया और इसलिए निचली अदालत ने मामले की रिमांड के बाद आदेश का यह हिस्सा पूरा किया और ललित सांगा की जांच आरोपी की मौजूदगी में की गई और उससे जिरह भी की गई और उसके बाद मामला सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया, और इसलिए, धारा 306 सीआरपीसी का पूर्ण अनुपालन हुआ । सरकारी गवाह की जांच का चरण तभी आता है जब उसे क्षमादान दिया गया हो और क्षमादान के बाद आरोपी की मौजूदगी में उसे गवाह के रूप में जांचा गया और उससे जिरह भी की गई। इसलिए आदेश में और मामले के रिमांड के बाद विद्वान सीजेएम द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया में कोई अवैधता नहीं है।

35. तथ्यात्मक स्थिति और ऊपर वर्णित कानूनी सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अपीलें योग्यताहीन हैं और इन्हें खारिज किये जाने योग्य हैं, जिसका हम निर्देश देते हैं।

के.के.टी. अपील खारिज.

यह अनुवाद लीना मुखर्जी, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है।